सम्मुख विनोद एस. भारद्वाज, जे.

मेसर्स वी2बी इन्फ्रा द प्रोपराइटर - अपीलकर्ता

बनाम

मेसर्स डिस्क लिमिटेड केएमपी एक्सप्रेसवे प्रोजेक्ट और अन्य - प्रतिवादी

सी. आर. ए.-ए. एस. संख्या 39 - 2022

24 मार्च, 2022

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881- धारा 118, 138, 139 - शिकायत मामले में न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा बरी किए जाने के फैसले के खिलाफ अपील - कानूनी रूप से लागू करने योग्य देनदारी स्थापित करने में विफलता – एक ही काम के लिए दो चेक जारी किए गए क्योंकि शिकायतकर्ता ने पहले कार्य आदेश के बाद काम निष्पादित नहीं किया था - कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण के खिलाफ चेक जारी नहीं किए गए - निचली अदालत द्वारा साक्ष्यों की कोई अवैधता, विकृति या गलत मूल्यांकन नहीं - अपील खारिज कर दी गई।

माना गया कि यह स्थापित करने का भार अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता पर था कि शिकायतकर्ता ने उक्त आदेश के विरुद्ध कार्य किया था जिसके लिए अग्रिम राशि दे दी गयी थी। उक्त तथ्य को नहीं माना जा सकता है और उक्त चेक के नकदीकरण के लिए अपना अधिकार स्थापित करने का बोझ अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता पर है। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 139 के साथ पठित धारा 118 के तहत उपधारणा का प्रतिवादी-अभियुक्त द्वारा परिस्थितियों की की समग्रता और इस तथ्य को समझाते हुए कि एक ही काम के संबंध में दो चेक जारी किए गए थे, का विधिवत खंडन किया गया। हालांकि दो अलग-अलग कार्य आदेश केवल इस कारण से जारी किए गए थे कि अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता ने पहले कार्य आदेश के बाद काम को निष्पादित नहीं किया था और उसे पूरा करने के आश्वासन के साथ प्रतिवादी -अभियुक्त से फिर से संपर्क किया था।

(पैरा 11)

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता जगजोत सिंह।

विनोद एस. भारद्वाज, जे. (मौखिक)

(1) वर्तमान अपील न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, फरीदाबाद द्वारा शिकायत संख्या आरबीटी-1290/15.03.2016 में शीर्षक "मैसर्स वी2बी इंफ्रा बनाम मैसर्स डीएससी लिमिटेड केएमपी और अन्य" में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत पारित फैसले के खिलाफ दायर की गई है।

(2) संक्षिप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स के अनुसार, अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता संबंधित स्वामित्व वाला व्यक्ति है जो एक ठेकेदार के रूप में सिविल कार्यों में लगा हुआ है। यह आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी-अभियुक्त कंपनी केएमपी एक्सप्रेसवे का निर्माण कर रही थी और उसने अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता को अपने कुंडली मानेसर पलवल एक्सप्रेसवे पर काम करने का ठेका दिया था । अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता ने उपरोक्त स्थल पर मशीनरी और कार्यबल तैनात किया था और प्रतिवादी-अभियुक्त के खिलाफ कई चालू बिल जारी किये थे । इस तरह के दायित्व का निर्वहन करने के लिए, प्रतिवादी-अभियुक्त ने आंशिक भुगतान के लिए अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता के पक्ष में 11,46,600/- रुपये की राशि का एक चेक नंबर 373149 दिनांक 12.09.2011 आईडीबीआई बैंक, नई दिल्ली का जारी किया था। हालाँकि, जब उक्त चेक को अपने बैंकर को नकदीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था, तो उसे दिनांक 23.02.2012 के रिटर्न मेमो के माध्यम से "भुगतान आहर्ता द्वारा रोक दिया गया" टिप्पणी के साथ बिना भुगतान के वापस कर दिया गया था । प्रतिवादी-अभियुक्त को दिनांक 07.03.2012 को एक कानूनी नोटिस दिया गया था, हालांकि, भुगतान नहीं किया गया जिसके परिणामस्वरूप शिकायत दर्ज हुई । प्रतिवादी-अभियुक्त को अभियोजन का सामना करने के लिए बुलाया गया था । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 251 के तहत आरोप का नोटिस दिया गया था, जिस पर उन्होंने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमे का दावा किया। प्रतिवादी-अभियुक्त ने शिकायतकर्ता से जिरह करने का भी विकल्प चुना और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 145 के तहत एक आवेदन दायर किया गया, जहां उन्हें अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता से जिरह करने की अनुमति दी गई ।

(3) अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता एक गवाह के रूप में पेश हुआ था और उसने निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत किए थेः

"Ex. सी -1	**:**	**मूल चेक**
Ex. सी-2	**:**	**रिटर्न मेमो दिनांक 23.02.2012**
Ex. सी-3	**:**	**कानूनी नोटिस दिनांक 07.03.2012**
Ex. सी-4	**:**	
&		**डाक रसीदें**
Ex. सी-5	**:**	
Ex. सी डब्लू 1/ ए:		**कार्य आदेश की प्रति"**

(4) बचाव में, प्रतिवादी-अभियुक्त ने आदित्य जय सिंह से डी. डब्ल्यू.-1 के रूप में पूछताछ की और निम्नलिखित दस्तावेजों को साबित किया:

Ex. डी. डब्ल्यू. 1/ए : लेन-देन जांच की प्रति

Ex. डी. डब्ल्यू. 1/बी : पत्र दिनांक 04.04.2017

Ex. डी. डब्ल्यू 1/ सी: पत्र दिनांक 28.03.2017

(5) उन्होंने डॉ. आर. के. सैनी के साक्ष्य भी प्रस्तुत किये और निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पर भी भरोसा किया थाः

Ex. डी -1 : चेक संख्या 373148 की प्रति

(6) संबंधित साक्ष्य के साथ-साथ अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों पर विचार करने पर, निचली अदालत की राय थी कि अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता कानूनी रूप से लागू करने योग्य दायित्व के अस्तित्व को स्थापित करने में विफल रहा क्योंकि वह कार्य आदेश के निष्पादन को स्थापित नहीं कर सका। अदालत ने इस प्रकार प्रतिवादी-अभियुक्त को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोप से बरी कर दिया। इससे व्यथित, तत्काल अपील को प्राथमिकता दी गई है।

(7) अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि निचली अदालत विवाद को पूरी तरह से समझने में विफल रहा है और निचली अदालत द्वारा अपनाया गया तर्क वैध और टिकाऊ नहीं है। यह तर्क दिया गया कि कि दो कार्य आदेश थे। अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता को पहला कार्य आदेश किराए पर दो उत्खनन उपकरण रुपये 6.30 लाख में उपलब्ध कराने के लिए दिनांक 30.08.2011 को दिया गया और एक महीने के लिए दस हाइवा ट्रकों को रुपये 11,70,000/- में किराए पर लेने के लिए दूसरा कार्य आदेश भी उसी दिन जारी किया गया था, कार्य आदेश के अनुसार, उत्खनन उपकरणों को किराये पर लेने हेतु रुपये 6,17,400 लाख की राशि का अग्रिम भुगतान चेक संख्या 373148 दिनांक 12.09.2011 के माध्यम से जारी किया गया और इसी तरह दस हाइवा ट्रक किराये पर लेने के लिए चेक क्रमांक 373149 दिनांक 12.09.2011 के माध्यम से रूपये 11,46, 600/- रु. की राशि जारी की गयी थी। कार्य आदेशों के एवज़ में जारी किए गए चेक कार्य निष्पादित नहीं करने के बावजूद और कार्य के लिए नए चेक प्राप्त करने के बावजूद नकदीकरण के लिए प्रस्तुत किया गया था तथा दिनांक 03.10.2011 को 'रोका हुआ भुगतान' निर्देश जारी किये गये।

(8) जहाँ तक समान राशि के लिए दूसरे चेक का सवाल है, वह बाद के कार्य आदेश दिनांक 21.09.2011 के एवज़ में दिया था और यह कि प्रतिवादी-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा अनुचित लाभ उठाने और दायित्व के निर्वहन से इनकार करने के लिए भ्रम पैदा करने की कोशिश की गई थी।

(9) निचली अदालत द्वारा पारित फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिवादी-अभियुक्त द्वारा एक विशिष्ट याचिका दायर की गई थी अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता को 30.08.2011 के कार्य आदेश के अनुसार दो उत्खनन यंत्रों को काम पर किराये पर रखने के लिए 6.17 लाख रुपये का भुगतान किया गया था, हालांकि उक्त कार्य कभी नहीं किया गया। एक और कार्य आदेश

अपीलार्थी-शिकायतकर्ता को 10 हाइवा ट्रकों को किराए पर लेने के लिए भी जारी किया गया था और रुपये 11,46,600/- का अग्रिम चेक जारी किया गया था। हालाँकि, अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता ने उक्त कार्य में से कोई भी कार्य निष्पादित नहीं किया और इसके परिणामस्वरूप, उक्त चेक के संबंध में बैंकर को 'भुगतान रोकने' के निर्देश जारी किए गए थे। इसके बाद अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता ने प्रतिवादी -अभियुक्त व्यक्तियों से संपर्क किया और आश्वासन दिया कि विचाराधीन कार्य किया जाएगा। इस आश्वासन पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता को 11,46,600/- रुपये की समान राशि का एक नया चेक जारी किया गया था, जो विधिवत नकदीकरण किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया था कि गलत विश्वास के कारण, प्रतिवादी-अभियुक्त ने पिछले चेकों को वापस करने के लिए नहीं कहा और भुगतान रोकने के निर्देश पहले ही जारी किए जा चुके थे। हालाँकि, अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता ने उक्त चेक प्रस्तुत किया। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि उक्त चेक मोबिलाइजेशन एडवांस के एवज में जारी किया गया था और यह किसी भी कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण/दायित्व के निर्वहन के लिए जारी नहीं किया गया था, विशेष रूप से जब काम निष्पादित नहीं किया गया था, इसलिए इसका अनादर परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध को नहीं होगा। उसका कहना है कि यह राशि दिनांक 30.08.2011 के कार्य आदेश के अनुसार 10 हाइवा ट्रक/टिपर उपलब्ध कराने के लिए अग्रिम भुगतान थी, लेकिन चूंकि वे अपीलार्थी-शिकायतकर्ता द्वारा प्रदान नहीं किए गए थे, इसलिए, विचाराधीन चेक को पहले से मौजूद दायित्व और कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण के निर्वहन में निष्पादित किए गए साधन के रूप में नहीं माना जा सकता है। अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता के लिए यह स्थापित करना आवश्यक था कि उसने कार्य आदेशों को निष्पादित किया था और इस प्रकार वह राशि का दावा करने का हकदार था।

(10) निचली अदालत ने सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किया है और अपने निष्कर्षों को दर्ज करते समय साक्ष्य पर चर्चा की है जो जो नीचे दिए गए हैं: -

> “13. धारा 139 के तहत धारणा का खंडन करने के लिए, आरोपी ने गवाह-बॉक्स में डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में कदम रखा है और कहा है कि आरोपी कंपनी के. एम. पी. एक्सप्रेसवे का निर्माण कर रही है और शिकायतकर्ता को 6,30,000/- रुपये में किराये के आधार पर दो उत्खनन यंत्र प्रदान करने के लिए दिनांक 30.08.2011 को कार्य आदेश दिया गया था और और एक महीने के लिए दस हाइवा ट्रकों को रुपये 11,70,000/- में किराए पर लेने के लिए दूसरा कार्य आदेश भी उसी दिन जारी किया गया था,कार्य आदेशों के अनुसार शिकायतकर्ता को चेक संख्या 373148 दिनांक 12.09.2011 के माध्यम से उत्खनन उपकरणों को किराये पर लेने हेतु रुपये 6,17,400 लाख की राशि का अग्रिम भुगतान टी. डी. एस. काटने के बाद किया गया। इसी तरह दस हाइवा ट्रक किराये पर लेने के लिए चेक क्रमांक 373149 दिनांक 12.09.2011 के माध्यम से रूपये 11,46,600/- रु. की राशि जारी की गयी थी (इसके बाद "प्रश्नगत चेक" के रूप में संदर्भित किया जाना है)।

हालांकि, शिकायतकर्ता ने रूपये 6,17,400/- की राशि के चेक का नकदीकरण किया लेकिन उत्खनन यन्त्र या हाइवा ट्रकों की आपूर्ति नहीं की गई। इसलिए आरोपी ने अपने बैंकर को "भुगतान रोकें" के निर्देश जारी करके प्रश्नगत चेक के भुगतान को रोक दिया था।

14. आरोपी कंपनी के अनुसार, शिकायतकर्ता ने फिर से आरोपी कंपनी से संपर्क किया और आश्वासन दिया कि वह कार्य आदेश को पूरा करेगा और चट्टान की खुदाई और 500 मिमी के छोटे आकार में पत्थर को तोड़ने का काम भी पूरा करेगा। अत: दिनांक 21.09.2011 को रु. 60,00,000/- का कार्य आदेश निष्पादित किया गया जिसमें पिछला कार्य आदेश भी शामिल है। इस कार्य आदेश की शर्तों में से एक शर्त यह थी कि आरोपी रुपये 17,64,000/- की राशि का अग्रिम भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे और इसे इस कार्य आदेश में समायोजित किया जाना था। 17,64,000/- रुपये की राशि में 6,17,400/- रुपये शामिल थे जो पहले चेक के नकदीकरण द्वारा प्राप्त किए गए थे और 11,46,600/- रुपये प्रश्नगत चेक के बदले में थे, जिसके लिए भुगतान रोक दिया गया था। इसलिए, आरोपी ने रुपये 11,46,600/- की राशि का एक नया चेक नंबर 373154 दिनांक 05.10.2011 जारी किया। इस चेक का दिनांक 14.10.2011 को नकदीकरण किया गया था। इस तथ्य को डी. डब्ल्यू. आदित्य जय सिंह, आई. डी. बी. आई. बैंक के सहायक प्रबंधक ने बैंक विवरण डी. डब्ल्यू. 1/ए. के द्वारा साबित किया है।

15. इसलिए, यह साबित होता है कि आरोपी कंपनी ने विचाराधीन चेक और आरोपी कंपनी के खाते के विवरण के लिए " भुगतान रोकने " के निर्देश जारी किए हैं, जैसा कि डी. डब्ल्यू. आदित्य जय सिंह, आई. डी. बी. आई. बैंक के सहायक प्रबंधक द्वारा बैंक विवरण डी. डब्ल्यू. 1/ए. के द्वारा साबित किया है, यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि जब चेक जारी किया गया था और जब इसे बैंकर को प्रस्तुत किया गया था, तब आरोपी कंपनी के खाते में पर्याप्त राशि थी। यहां तक कि आरोपी कंपनी ने भी इस तथ्य को साबित किया है कि उसी राशि यानी 11,46,600/- का अगला चेक 14.10.2011 को नकदीकरण किया गया था, जो बाद में जारी किया गया था और उस पर उसी श्रृंखला का सीरियल नंबर है, जो विचाराधीन चेक के बाद है। इसलिए, शिकायतकर्ता को 11,46,600/- रुपये की इस राशि के लिए नए चेक संख्या 373154 दिनांक 05.10.2011 के नकदीकरण द्वारा संबंधित चेक का भुगतान प्राप्त हुआ है। यहां तक कि, विचाराधीन चेक की राशि और चेक संख्या 373154, जिसे नकदीकरण किया गया था, बिल्कुल वैसा ही है,

जिससे पता चलता है कि शिकायतकर्ता को उतनी ही राशि मिली है।

16. शिकायतकर्ता के विद्वान वकील ने Ex. DW1/A के पृष्ठ संख्या 4 पर बहुत अधिक भरोसा किया, जो कि आरोपी द्वारा उठाए गए कार्य आदेश के मद्देनजर शिकायतकर्ता द्वारा कार्य के निष्पादन के लिए जारी किया गया एक बिल है । उक्त बिल दिनांक 20.01.2012 के अवलोकन पर बिलों की कुल राशि रु. 5,87,422/- है । शिकायतकर्ता की इस दलील को भी स्वीकार कर लिया जाए तो भी उसने केवल 5,87,422/- रुपये के काम को अंजाम दिया है जबकि आरोपियों ने 17,64,000/- रुपये का भुगतान साबित किया है । दूसरी ओर यह बिल ही यह बताने के लिए पर्याप्त है कि शिकायतकर्ता ने दिनांक 21.01.2012 के बिल के अलावा कोई भी कार्य नहीं किया है, जो 5,87,422/- रुपये का है ।

17. यहां तक कि शिकायतकर्ता ने मामले की फाइल पर कुछ भी साबित नहीं किया है कि उसने कार्य आदेश पूरा कर लिया है । इसलिए, जब किसी काम के लिए अग्रिम भुगतान के रूप में एक चेक जारी किया जाता है और किसी भी कारण से समझौते/कार्य आदेश को उसके तार्किक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचाया जाता है, तो चेक को मौजूदा देनदारी के लिए जारी नहीं किया गया माना जा सकता है । ।इसलिए, दायित्व साबित करने की जिम्मेदारी शिकायतकर्ता पर वापस आ जाती है । इसके अलावा, विचाराधीन चेक पर तारीख 12.09.2011 अंकित है, जबकि उसी राशि का अगला चेक 05.10.2011 को जारी किया गया है और 14.10.2011 को नकदीकरण किया गया है, जिससे शिकायतकर्ता की कहानी पर संदेह पैदा होता है।इसलिए, आरोपी कंपनी का यह बचाव कि उसने प्रश्नगत चेक के बदले में अगला चेक जारी किया है, सही प्रतीत होता है ।

18. अन्यथा भी, विचाराधीन (प्रश्नगत) चेक को शिकायतकर्ता द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य आदेश दिनांक 30.08.2011 के लिए अग्रिम भुगतान के रूप में जारी किया गया था । लेकिन शिकायतकर्ता उक्त कार्य आदेश को निष्पादित करने में विफल रहा और पहले के कार्य आदेश दिनांक 30.08.2011 को नए कार्य आदेश दिनांक 21.09.2011 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जिसके लिए बाद में अलग-अलग चेक जारी किए गए । इसलिए, विचाराधीन (प्रश्नगत) चेक किसी भी कानूनी रूप से लागू करने योग्य दायित्व के लिए जारी नहीं किया गया था, बल्कि काम के निष्पादन के लिए एक अग्रिम के रूप में जारी किया गया था । इसलिए, कानूनी रूप से लागू करने योग्य दायित्व को साबित करने के लिए यह शिकायतकर्ता को साबित करना था कि उसने कार्य आदेश निष्पादित कर दिया है। । **इंडस एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **मैग्नम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड, (2014) 12 एससीसी** 539 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानूनी रूप से लागू करने योग्य दायित्व की अवधारणा को निम्नानुसार परिभाषित किया है:

“धारा 138 से जुड़ा स्पष्टीकरण धारा 138 के प्रयोजन के लिए 'ऋण या अन्य दायित्व' अभिव्यक्ति के अर्थ की व्याख्या करता है। इस अभिव्यक्ति का अर्थ है कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण या अन्य दायित्व । धारा 138 अस्वीकृत चेक को एक अपराध के रूप में मानती है, यदि चेक किसी ऋण या अन्य दायित्व के निर्वहन में जारी किया गया है । स्पष्टीकरण में कोई संदेह नहीं है कि धारा 138 के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए, चेक की निकासी की तारीख पर कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण या अन्य दायित्व मौजूद होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, मौजूदा या पिछले न्यायिक दायित्व के निर्वहन में चेक का आहरण धारा 138 के तहत अपराध लाने के लिए अनिवार्य है । यदि चेक माल की खरीद के लिए अग्रिम भुगतान के रूप में जारी किया गया है और किसी भी कारण से खरीद आदेश नहीं है या तो इसके रद्द होने के कारण या अन्यथा इसके तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचा, और जिस सामग्री या सामान के लिए खरीद आदेश दिया गया था, उसकी आपूर्ति नहीं की गई है, हमारे विचार में, चेक को मौजूदा ऋण या देनदारी के लिए नहीं लिया जा सकता है। अग्रिम भुगतान की प्रकृति में चेक द्वारा भुगतान इंगित करता है कि चेक के निकासी के समय कोई मौजूदा देनदारी नहीं थी

(11) अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता पर यह स्थापित करने का भार था कि शिकायतकर्ता ने उक्त आदेश के खिलाफ काम किया था जिसके लिए अग्रिम भुगतान जारी किया गया था । उक्त तथ्य को नहीं माना जा सकता है और उक्त चेक के नकदीकरण के लिए अपना अधिकार स्थापित करने का बोझ अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता पर है। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 139 के साथ पठित धारा 118 के तहत प्रतिवादी -अभियुक्त द्वारा परिस्थितियों की समग्रता और इस तथ्य को समझाते हुए कि एक ही काम के संबंध में दो चेक जारी किए गए थे, इसका विधिवत खंडन किया गया, हालांकि दो अलग-अलग कार्य आदेश केवल इस कारण से जारी किए गए थे कि अपीलकर्ता -शिकायतकर्ता ने पहले कार्य आदेश के बाद काम को निष्पादित नहीं किया था और उसे पूरा करने के आश्वासन के साथ प्रतिवादी-अभियुक्त से दोबारा संपर्क किया था।

बरी होने के खिलाफ आवेदन में कानूनी स्थिति

(12) इससे अब बरी किए जाने के खिलाफ अपील की सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की गुंजाइश बनती है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***एम. जी. अग्रवाल*** बनाम ***महाराष्ट्र राज्य***[1] के मामले में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 200

"(16) धारा 423 (1) अपीलीय न्यायालय की शक्तियों को उसके समक्ष प्रस्तुत अपीलों के निपटारे में निर्धारित करती है और खंड (ए) और (बी) क्रमशः दोषमुक्ति (बरी) के खिलाफ अपील और दोषसिद्धि (दोषी) के खिलाफ अपील से निपटते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि खंड (ए) द्वारा प्रदत्त शक्ति, जो दोषमुक्ति (बरी) के आदेश के खिलाफ अपील से संबंधित है, खंड (बी) द्वारा प्रदत्त शक्ति जितनी ही व्यापक है, जो दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ अपील से संबंधित है, और इसलिए, यह स्पष्ट है कि आपराधिक अपीलों से निपटने में उच्च न्यायालय की शक्तियां समान रूप से व्यापक हैं, चाहे विचाराधीन अपील दोषमुक्ति के विरुद्ध हो या दोषसिद्धि के विरुद्ध। यह प्रश्न का एक पहलू है। प्रश्न का दूसरा पहलू उस दृष्टिकोण इर्द-गिर्द केंद्रित है जिसे उच्च न्यायालय बरी करने के आदेशों के खिलाफ अपीलों से निपटने के लिए अपनाता है।इस तरह की अपीलों से निपटने में, उच्च न्यायालय स्वाभाविक रूप से एक आरोपी व्यक्ति के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को ध्यान में रखता है और इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि उक्त धारणा निचली अदालत द्वारा उसके पक्ष में पारित बरी के आदेश से मजबूत होती है और और इसलिए, यह तथ्य कि आरोपी व्यक्ति उचित संदेह के लाभ का हकदार है, उच्च न्यायालय के दिमाग में हमेशा मौजूद रहेगा जब वह मामले की योग्यता पर विचार करेगा। । एक अपीलीय न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय आम तौर पर निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष को परेशान करने में धीमा होता है, विशेष रूप से जब उक्त निष्कर्ष मौखिक साक्ष्य की सराहना पर आधारित होता है क्योंकि निचली अदालत को उन गवाहों के आचरण को देखने का लाभ होता है जिन्होंने साक्ष्य दिया है। इस प्रकार, हालांकि बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर विचार करने में उच्च न्यायालय की शक्तियां उतनी ही व्यापक हैं जितनी कि दोषसिद्धि के खिलाफ अपील पर विचार करने में, अपीलों के पूर्व वर्ग से निपटने में, इसका दृष्टिकोण निर्दोषता की धारणा से बहने वाले प्रबल विचार द्वारा नियंत्रित होता है। कभी-कभी, शक्ति की व्यापकता पर जोर दिया जाता है, जबकि अन्य अवसरों पर, बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील से निपटने में सतर्क दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है, और और यह जोर समय-समय पर उपयोग किए जाने वाले विभिन्न शब्दों या वाक्यांशों में व्यक्त किया जाता है। लेकिन वास्तविक कानूनी स्थिति यह है कि बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपीलों से निपटने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण चाहे कितना भी चौकस और सतर्क क्यों न हो, वह निस्संदेह अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के अपराध या बेगुनाही के संबंध में पेश किए गए सबूतों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का हकदार है।

यह स्थिति प्रिवी काउंसिल द्वारा शीओ स्वरूप बनाम द, किंग एम्परर (1) और नूर मोहम्मद बनाम एम्परर एआईआर 1945 पीसी 151 में स्पष्ट की गई है।

(17) हालाँकि, इस न्यायालय के पहले के कुछ निर्णयों में, बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील से निपटने में सतर्क दृष्टिकोण अपनाने के महत्व पर जोर देते हुए, यह देखा गया था कि निर्दोषता की धारणा को बरी करने के आदेश से प्रबलित किया जाता है और इसलिए, "निचली अदालत के निष्कर्ष जिन्हें गवाहों को देखने और उनके साक्ष्य को सुनने का लाभ केवल (1) (1934) एल.आर. 61 1. ए. 398. (2) ए.आई.आर. 1945 पी.सी. 151, बहुत महत्वपूर्ण और सम्मोहक कारण से दिया जा सकता है" : सूरजपाल सिंह बनाम राज्य (1) । इसी तरह अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2) में, यह देखा गया कि बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप केवल तभी उचित होगा जब "ऐसा करने के लिए बहुत ठोस और बाध्यकारी कारण हों।') कुछ अन्य निर्णयों में, यह कहा गया है कि बरी करने का आदेश को केवल "अच्छे और पर्याप्त ठोस कारणों" या "मजबूत कारणों" के लिए वापस लिया जा सकता है । इन टिप्पणियों के प्रभाव की सराहना करते समय, यह याद रखना चाहिए कि इन टिप्पणियों का उद्देश्य एक कठोर या कठोर नियम निर्धारित करना नहीं है जो बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय के निर्णय को नियंत्रित करता हो । संहिता की धारा 423 (1) के खंड (ए) में एक अतिरिक्त शर्त लागू करने के लिए उनका इरादा नहीं था और न ही उनका इरादा पढ़ा जाना चाहिए। उक्त टिप्पणियों का उद्देश्य केवल इतना है कि बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर विचार करने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सतर्क होना चाहिए क्योंकि जैसा कि लॉर्ड रसेल ने शू स्वरूप के मामले में कहा था, अभियुक्त के पक्ष में निर्दोष होने की धारणा "निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं होती है कि उसे उसके मुकदमे में बरी कर दिया गया है।" इसलिए, "पर्याप्त और बाध्यकारी कारण" अभिव्यक्ति द्वारा सुझाए गए परीक्षण को एक सूत्र के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए जिसे हर मामले में सख्ती से लागू किया जाना चाहिए । यह इस न्यायालय के हाल के फैसलों का प्रभाव है, उदाहरण के लिए, संवत सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2) और हरबंस सिंह बनाम पंजाब राज्य (4) में; और इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि बरी करने के फैसले को पलटने से पहले, उच्च न्यायालय को अनिवार्य रूप से उसमें दर्ज निष्कर्षों को विकृत के रूप में चिह्नित करना चाहिए । इसलिए, वर्तमान अपीलों में हमें खुद से यह सवाल पूछना है कि

क्या अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, उच्च न्यायालय का इस निष्कर्ष पर पहुंचना उचित था कि (1) (1952) एस.सी.आर. 193, 201. (2) (1953) एस.सी.आर. 418 (3) (1961) 3 एस. सी.आर. 120. (4) (1962) पूरक आई.एस.सी.आर. 104. अपीलकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन का मामला उचित संदेह से परे साबित हुआ था और निचली अदालत द्वारा लिया गया विपरीत दृष्टिकोण गलत था। इस प्रश्न का उत्तर देते समय, हम, निस्संदेह, उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के विरुद्ध अपीलकर्ताओं द्वारा की गई शिकायत की सराहना आदेश के लिए साक्ष्य की मुख्य और व्यापक विशेषताओं पर विचार करेंगे। लेकिन अनुच्छेद 136 के तहत हम आम तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होंगे, विशेष रूप से जहां उक्त निष्कर्ष मौखिक साक्ष्य की सराहना पर आधारित हैं।

(13) इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***नागभूषण*** बनाम ***कर्नाटक राज्य***[2] मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"**7.2** योग्यता के आधार पर अपील पर विचार करने से पहले, बरी करने के खिलाफ अपील पर कानून और धारा 378 सीआरपीसी के दायरे और सीमा और बरी करने के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप पर विचार किया जाना आवश्यक है।

7.2.1 बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीसी 189 के मामले में, इस न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 378 के तहत बरी किए जाने के खिलाफ अपील में पालन किए जाने वाले सिद्धांतों को दोहराया था। पैराग्राफ 12 से 19 में, इसे निम्नानुसार देखा और माना जाता है:

12. इस न्यायालय ने बार-बार निचली अदालत द्वारा पारित फैसले और बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं।। अपीलीय न्यायालय को आम तौर पर ऐसे मामले में बरी करने के फैसले को रद्द नहीं करना चाहिए जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, हालांकि अपीलीय न्यायालय का दृष्टिकोण अधिक संभावित हो सकता है। बरी करने के फैसले पर विचार करते समय, अपीलीय न्यायालय को अभिलेख पर मौजूद पूरे सबूतों पर विचार करना होता है, ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या निचली निचली अदालत के विचार विकृत थे या अन्यथा अस्थिर थे। अपीलीय न्यायालय को इस बात पर विचार करने का अधिकार है कि क्या तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने में, निचली अदालत स्वीकार्य साक्ष्य को ध्यान में रखने में विफल रही और/या कानून के विपरीत रिकॉर्ड पर लाए गए साक्ष्यों पर विचार किया है।

[2] (2021) 5 एससीसी 212

इसी तरह, सबूत का बोझ गलत तरीके से रखना भी अपीलीय न्यायालय द्वारा जांच का विषय हो सकता है। (देखें - बालक राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1975) 3 एससीसी 219, शंभू मिसिर बनाम बिहार राज्य (1990) 4 एससीसी 17, शैलेंद्र प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2003) 1 एससीसी 761, नरेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2004) 10 एससीसी 699, बुद्ध सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2006) 9 एससीसी 731, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह (2007) 13 एससीसी 102, एस. रामा बनाम एस.रामी रेड्डी (2008) 5 एससीसी 535, अरुवेलु बनाम राज्य (2009) 10 एससीसी 206, पेरला सोमशेखर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2009) 16 एससीसी 98 और राम सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2010) 2 एससीसी 445)

13. शीओ स्वरूप बनाम किंग एम्परर एआईआर 1934 पीसी 227 में, प्रिवी काउंसिल ने निम्नानुसार अवलोकन किया:(आई. ए. पी. 404) ". उच्च न्यायालय को हमेशा ऐसे मामलों को उचित महत्व देना चाहिए और उन पर विचार करना चाहिए जैसे (1) गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में विचारण न्यायाधीश के विचार; (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषता का अनुमान, एक ऐसी धारणा जो निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं हुई है कि वह अपने मुकदमे में बरी हो गया है; (3) किसी भी संदेह के लाभ के लिए अभियुक्त का अधिकार; और (4) गवाहों को देखने का लाभ उठाने वाले न्यायाधीश द्वारा तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने में अपील न्यायालय की धीमी गति।”

14. इस न्यायालय द्वारा कानून के उपरोक्त सिद्धांत का लगातार पालन किया गया है। (देखें - तुलसीराम कानू बनाम राज्य एआईआर 1954 एससी 1, बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1957 एससी 216, एम.जी. अग्रवाल बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 1963 एससी 200, खेदू मोहटन बनाम बिहार राज्य (1970) 2 एससीसी 450, सांबसिवन बनाम केरल राज्य (1998) 5 एससीसी 412, भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2002) 4 एससीसी 85 और गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान (2007) 3 एससीसी 755)

15. चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415 में, इस न्यायालय ने कानूनी स्थिति को निम्नानुसार दोहराया: (एससीसी पृष्ठ 432, पैरा 42) "(1) एक अपीलीय अदालत के पास साक्ष्य की समीक्षा, पुनः मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है जिस पर बरी करने का आदेश आधारित है। (2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसी शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और एक अपीलीय न्यायालय तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले सबूतों पर विचार करती है।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे 'पर्याप्त और सम्मोहक कारण', 'अच्छे और पर्याप्त आधार', 'बहुत मजबूत परिस्थितियाँ', 'विकृत निष्कर्ष', 'स्पष्ट गलतियाँ', आदि का उद्देश्य बरी किये जाने के विरुद्ध अपील में किसी अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है। साक्ष्य की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने की अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में अपीलीय अदालत की बरी करने में हस्तक्षेप करने की अनिच्छा पर जोर देने के लिए इस तरह के वाक्यांश 'भाषा के विकास' की प्रकृति में अधिक हैं।

(4) हालाँकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि बरी होने के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है।सबसे पहले, आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत के तहत निर्दोष होने का अनुमान उसके लिए उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह किसी सक्षम अदालत द्वारा दोषी साबित नहीं हो जाता। दूसरा, आरोपी ने अपनी रिहाई सुनिश्चित कर ली है, उसकी बेगुनाही की धारणा को निचली निचली अदालत द्वारा और भी प्रबलित, पुन: पुष्टि और मजबूत किया गया है।

(5) यदि अभिलेख पर मौजूद सबूतों के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय न्यायालय को निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए बरी करने के निष्कर्ष में बाधा नहीं डालनी चाहिए।"

16. घुरेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2008) 10 एससीसी 450 में, इस न्यायालय ने उक्त दृष्टिकोण को दोहराते हुए कहा कि जिन मामलों में निचली अदालतों ने आरोपी को बरी कर दिया है, उनसे निपटने में अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि निचली अदालत द्वारा बरी होना इस धारणा को बल मिलता है कि वह निर्दोष है। अपीलीय न्यायालय को निचली अदालत के फैसले को उचित महत्व और विचार देना चाहिए क्योंकि निचली अदालत को गवाहों के व्यवहार को देखने का विशिष्ट लाभ था और वह गवाहों की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करने के लिए बेहतर स्थिति में थी।

17. राजस्थान राज्य बनाम नरेश (2009) 9 एससीसी 368 में, न्यायालय ने फिर से इस न्यायालय के पहले के निर्णयों की फिर से जांच की और निर्धारित किया कि: (एससीसी पृष्ठ 374, पैरा 20) "20 ... बरी करने के आदेश में हल्के से हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, भले ही अदालत का मानना है कि कुछ सबूत आरोपी की ओर उंगली उठाते हैं।

18. उत्तर प्रदेश राज्य में बनाम बन्ने (2009) 4 एससीसी 271 में, इस न्यायालय ने कुछ उदाहरणात्मक परिस्थितियाँ दीं जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए जाने के फैसले में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना उचित होगा। परिस्थितियों में शामिल हैं: (एससीसी पृष्ठ 286, पैरा 28)"(i) उच्च न्यायालय का निर्णय स्थापित कानूनी स्थिति की अनदेखी करके कानून के पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण पर आधारित है;

(ii) उच्च न्यायालय के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य और दस्तावेजों के विपरीत हैं;

(iii) साक्ष्य से निपटने में उच्च न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध था जिससे न्याय की गंभीर हानि हुई ;

(iv) केस में रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और गलत कानून के आधार पर उच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण और अनुचित है;

(v) इस न्यायालय को हमेशा उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को उचित महत्व और विचार देना चाहिए;

(vi) यह न्यायालय ऐसे मामले में हस्तक्षेप करने में बेहद अनिच्छुक होगा जब सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने बरी करने का आदेश दर्ज किया हो। " धनपाल बनाम राज्य (2009) 10 एस. सी. सी. 401 में इस न्यायालय द्वारा इसी तरह के विचार को दोहराया गया है।

19. इस प्रकार, इस मुद्दे पर कानून को इस प्रभाव से संक्षेपित किया जा सकता है कि असाधारण मामलों में जहां बाध्यकारी परिस्थितियां हैं, और अपील के तहत निर्णय विकृत पाया जाता है, अपीलीय न्यायालय बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकती है। अपीलीय न्यायालय को अभियुक्त की बेगुनाही की धारणा को ध्यान में रखना चाहिए और यह भी कि निचली अदालत द्वारा बरी होना उसकी बेगुनाही की धारणा को मजबूत करता है। जहां दूसरा दृष्टिकोण संभव हो वहां नियमित तरीके से हस्तक्षेप से बचना चाहिए, जब तक कि हस्तक्षेप के लिए अच्छे कारण न हों।" (जोर दिया गया) जब किसी अदालत द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों को विकृत माना जा सकता है, तो उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 20 में निपटान और विचार किया गया है, जो इस प्रकार है:

“20. किसी न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों को विकृत माना जा सकता है यदि निष्कर्ष प्रासंगिक सामग्री की अनदेखी या बहिष्कार करके या अप्रासंगिक/अस्वीकार्य सामग्री को ध्यान में रखते हुए निकाले गए हों।

निष्कर्ष को विकृत भी कहा जा सकता है यदि यह "साक्ष्य के भार के खिलाफ" है, या यदि निष्कर्ष इतनी अपमानजनक रूप से तर्क की अवहेलना करता है कि तर्कहीनता के दुष्प्रभाव से ग्रस्त है। (राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1984) 4 एससीसी 635, आबकारी और कराधान अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकरण बनाम गोपी नाथ एंड संस 1992 सप्लीमेंट (2) एससीसी 312, त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक बनाम सी. सी. ई. 1994 (3) एससीसी 665, गया दिन बनाम हनुमान प्रसाद (2001) 1 एससीसी 501, अरुवेलु बनाम राज्य (2009) 10 एससीसी 206 और गामिनी बाला कोटेश्वर राव बनाम ए. पी. राज्य (2009) 10 एससीसी 636।" (जोर दिया गया)

आगे यह भी कहा गया है कि कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त (1999) 2 एससीसी 10 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का पालन करने के बाद, यदि कोई निर्णय बिना किसी सबूत या पूरी तरह से अविश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर लिया जाता है और कोई भी उचित व्यक्ति उस पर कार्रवाई नहीं करेगा, तो आदेश विकृत हो जाएगा। लेकिन अगर रिकॉर्ड में कुछ सबूत हैं जो स्वीकार्य हैं और जिन पर भरोसा किया जा सकता है, तो निष्कर्षों को विकृत नहीं माना जाएगा और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

7.3 विजय मोहन सिंह बनाम कर्नाटक राज्य, (2019) 5 एससीसी 436 के मामले में, इस न्यायालय के पास सीआरपीसी की धारा 378 के दायरे पर फिर से विचार करने और उच्च न्यायालय द्वारा बरी किये जाने के विरुद्ध अपील में हस्तक्षेप करने का अवसर था। इस न्यायालय ने 1952 के बाद से इस न्यायालय के निर्णयों पर विचार किया। पैराग्राफ 31 में, इसे निम्नानुसार देखा और अभिनिर्धारित किया गया है:

"31. उम्मेदभाई जादवभाई (1978) 1 एससीसी 228 मामले में इस न्यायालय के समक्ष एक समान प्रश्न पर विचार किया गया। इस न्यायालय के समक्ष मामले में, उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण साक्ष्यों की पुनर्मूल्यांकन पर विद्वान निचली निचली अदालत द्वारा पारित बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप किया था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने बरी करने के फैसले को पलटते हुए, आरोपी को बरी करते समय निचली अदालत द्वारा दिए गए कारणों पर विचार नहीं किया। उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि करते हुए, इस न्यायालय ने पैरा 10 में निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की और और कहा: (एससीसी पी. 233)

"10. एक बार जब बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील पर सही ढंग से विचार किया गया, तो उच्च न्यायालय को स्वतंत्र रूप से पूरे साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने का अधिकार था। आम तौर पर, उच्च न्यायालय सत्र न्यायाधीश की राय को उचित महत्व देगा यदि

साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के बाद भी ऐसा ही किया गया हो। यह नियम वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा जहां सत्र न्यायाधीश ने मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में एक बहुत ही भौतिक और निर्णायक पहलू की बिल्कुल गलत धारणा बनाई है।"

31.4. के. गोपाल रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य (1979) 1 एससीसी 355 में, इस न्यायालय ने कहा है कि जहां निचली निचली अदालत खुद को काल्पनिक संदेहों से घिरा होने देता है, मामूली कारणों से विश्वसनीय साक्ष्य को खारिज कर देता है और उन सबूतों पर विचार करता है जो लेकिन मुश्किल से संभव है, यह उच्च न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य है कि वह न्याय के हित में हस्तक्षेप करे, ताकि ऐसा न हो कि न्याय प्रशासन का उपहास उड़ाया जाए। (जोर दिया गया)।"

(14) इस प्रकार, यह दायित्व अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता पर डाल दिया गया कि वह यह स्थापित करे कि शिकायतकर्ता द्वारा दोनों कार्य आदेशों का विधिवत पालन किया गया था और वे कार्य आदेश के सफल निष्पादन पर उक्त भुगतान के हकदार थे।

(15) अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गयी दलीलों के साथ-साथ निचली अदालत द्वारा देखे गए तथ्यों पर विचार करने के बाद, मुझे नहीं लगता कि अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत पेश करने में समर्थ रहा है कि विचाराधीन चेक कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण के खिलाफ जारी किया गया था। निचली अदालत द्वारा साक्ष्यों की कोई अवैधता, विकृति या गलत मूल्यांकन नहीं किया गया है। यह नहीं माना जा सकता है कि निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष सामने लाए गए साक्ष्य के आधार पर विकृत और अस्थिर हैं।

(16) तत्काल अपील किसी भी योग्यता से रहित है और इसलिए खारिज की जाती है।

शुभरीत कौर

अस्वीकरण- स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

हरविंदर सिंह, अनुवादक, जिला न्यायालय, सोनीपत।